विचार संगम

भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

विचार संगम

भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण
प्रथम 2025

ISBN : 978-81-993854-0-5

मूल्य - 400/-

रचना - विचार संगम-भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

21

भारतीय ज्ञान परम्परा में वैदिक वास्तुकला

डॉ. मृत्युंजय शर्मा

सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)

हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय ज्ञान परम्परा में वैदिक वास्तुकला का अत्यंत गूढ़ और आध्यात्मिक स्वरूप रहा है। वैदिक साहित्य में वास्तुकला केवल भवन निर्माण की तकनीक नहीं, बल्कि सृष्टि की समग्र रचना का प्रतीक मानी गई है। वेदों में 'विश्वकर्मा' को सृष्टि का प्रथम रचनाकार कहा गया है — वह जो संपूर्ण विश्व का कर्ता है। इस आधार पर प्रजापति को भी विश्वकर्मा के रूप में देखा गया, जिसने ब्रह्माण्ड की संरचना उसी प्रकार की जैसे एक शिल्पकार किसी भवन का निर्माण करता है। यही कल्पना आगे चलकर 'भौम विश्वकर्मा' के रूप में मूर्त होती है अर्थात् पृथ्वी पर होने वाला वास्तु-निर्माण ब्रह्माण्डीय निर्माण का प्रतिरूप है।

वैदिक कल्पना में यह भी वर्णित है कि ब्रह्माण्ड रूपी महावृक्ष को काट-छाँटकर (तक्षण करके) द्यावा-पृथ्वी (आकाश और पृथ्वी) का निर्माण किया गया। यही विचार बाद के वास्तुशास्त्रों में सृष्टि और स्थापत्य के संबंध का आधार बना।

वैदिक युग में भवन निर्माण कला अत्यंत विकसित थी। घर के लिए 'दम', 'पस्त्य', 'सदन', 'हर्म्य', 'अस्त', 'शरण' आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन गृहों की रचना सुव्यवस्थित थी और उनके मुख्यत: तीन भाग माने गए—

पहला भाग सामने का आँगन या गृहद्वार था, जो परिवार और अतिथियों के प्रवेश के लिए खुला क्षेत्र होता था। दूसरा भाग 'सदस' या 'बैठक' था, जो परामर्श, सभा और सामाजिक संवाद का स्थान था। बाद के समय में यही भाग 'सभा' या 'आस्थान-मण्डप' कहलाने लगा, जो राजप्रासादों में दरबार या अतिथि-कक्ष के रूप में प्रयुक्त हुआ। तीसरा भाग 'पत्नीसदन' था, जिसे राजप्रासादों में 'अन्त:पुर' कहा गया। यह स्त्रियों के निवास का आंतरिक भाग था, जिसे 'हर्म्य' या 'हरम' की संज्ञा मिली।

गृह में अग्नि की पूजा और यज्ञ के लिए विशेष स्थान निर्धारित होता था, जिसे 'अग्निशाला' या 'अग्निशरण' कहा गया। यह वैदिक गृह का सबसे पवित्र केंद्र था। बाद में यही परंपरा 'देवगृह' के रूप में विकसित हुई, जहाँ पूजा और धार्मिक अनुष्ठान

होते थे।

इस वैदिक स्थापत्य परंपरा का प्रभाव न केवल भारतीय, बल्कि पारसी सभ्यता पर भी पड़ा। पारसियों में भी अपने घरों में निरंतर अग्नि जलाए रखने की परंपरा वैदिक काल से ही चली आ रही है, जो अग्नि के प्रति उस आदिम श्रद्धा का द्योतक है जिसे वैदिक आर्य 'दैवी शक्ति' के प्रतीक के रूप में पूजते थे।

वैदिककालीन गृह-निर्माण में सादगी, उपयोगिता और सौंदर्य का अद्भुत संगम था। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि घरों के निर्माण में मिट्टी, पत्थर, लकड़ी, बाँस, तृण और पत्तियों जैसे प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग होता था। नींवों को दृढ़ (ध्रुव) बनाया जाता था। दीवारों पर बाँसों का जाल बिछाकर, रस्सियों से बाँधकर 'आयाम' तैयार किया जाता था। इसके ऊपर तृण-पत्तों की परतें (वहन्) बिछाई जातीं और बाँस की खपच्चियों से छत को मजबूती दी जाती थी। बड़ी छतों को थूनियों या बल्लियों का सहारा दिया जाता था।

छतें प्राय: ढोलाकार होती थीं, जिनकी तुलना अथर्ववेद में अलंकृत हथिनी की पीठ से की गई है। घरों को स्वच्छ और सुंदर बनाया जाता था; दीवारों पर आकर्षक चित्र बनाए जाते थे और सुंदर घर की तुलना सुसज्जित वधू से की गई है।

शतपथ ब्राह्मण में गृह के विभिन्न कक्षों — अग्निशाला, सभा-मंडप, पत्नीसदन आदि का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार वैदिक गृह केवल निवास नहीं, बल्कि पवित्रता, समृद्धि और सौंदर्य का केंद्र था।

वैदिक काल में गृह-निर्माण केवल तकनीकी कार्य नहीं, बल्कि एक धार्मिक और सांस्कृतिक अनुष्ठान था। निर्माण आरम्भ करने से पूर्व गृह का पूजन और विन्यास किया जाता था। ऋग्वेद में 'वास्तोस्पति' नामक देवता का उल्लेख मिलता है, जो वास्तु या गृह का अधिपति माना गया है। गृह-निर्माण से पहले इसी देवता का आहवान कर उनसे गृह की स्थिरता, समृद्धि और शांति की प्रार्थना की जाती थी।

ऋग्वेद के कुछ स्थलों पर वास्तोस्पति को इन्द्र और त्वष्टा दोनों के समान बताया गया है। त्वष्टा को बाद के ग्रंथों में एक कुशल शिल्पी और सृष्टि-रचनाकार के रूप में वर्णित किया गया है। एक मंत्र में इन्द्र से प्रार्थना की गई है — ''हे इन्द्र! तुम गृहपति हो, घर के आधार रूप स्तंभ (स्थाणु) सुदृढ़ हों।'' यह दर्शाता है कि वैदिक काल में वास्तु केवल शिल्प नहीं, बल्कि दिव्यता और स्थायित्व का प्रतीक था, जहाँ निर्माण की हर प्रक्रिया ईश्वरीय आशीर्वाद से जुड़ी मानी जाती थी।

वैदिक काल में गृहों के अनेक प्रकार प्रचलित थे— छोटे साधारण घरों से लेकर विशाल भवनों तक। बड़े गृह को 'वृहत्-मान्' कहा गया है, और उनके लिए 'पृथु', 'उरू', 'दीर्घ', 'गंभीर', 'मोही' जैसे विशेषणों का प्रयोग भी मिलता है। ऋग्वेद में वर्णन है कि एक सम्राट हजार स्तंभों वाले भव्य और दृढ़ 'प्रशाल' (प्रासाद) में

बैठकर प्रजाजन से सहृदयता से व्यवहार करता था। इसी प्रकार मित्र और वरुण के महलों को भी हजार स्तंभों और हजार द्वारों वाला बताया गया है, जिससे इन भवनों की विशालता और भव्यता का अनुमान होता है।

ऋग्वेद में अत्रि के संदर्भ में 'सौ द्वारों वाले यंत्रकोष्ठ' का उल्लेख भी मिलता है, जो उस युग के स्थापत्य वैभव का प्रतीक है। कालांतर में मौर्यकालीन स्थापत्य— जैसे कुमराहार (पटना) में चन्द्रगुप्त मौर्य के 80 स्तंभों वाले सभामंडप के अवशेष— संभवत: इन्हीं वैदिक परंपराओं की प्रतिध्वनि हैं।

वैदिक काल की 'सभा' और 'समिति' जैसी संस्थाओं के लिए भी बड़े मंडपों का प्रयोग होता था। माना जाता है कि 'सभा' के लिए सौ स्तंभों वाला और 'समिति' के लिए हजार स्तंभों वाला मंडप उपयोग में लाया जाता था। सभा जहाँ राज्य के बुद्धिजीवियों और वृद्ध सलाहकारों की संस्था थी, वहीं समिति समस्त प्रजा के अधिवेशन का प्रतीक थी। इसीलिए सहस्र स्तंभों वाले इन प्रासाद-भागों को 'सदस' कहा गया, जो वैदिक स्थापत्य की लोकतांत्रिक और सांस्कृतिक भावना का उत्कृष्ट उदाहरण है।

ऋग्वेद में निवास-स्थानों और उनके उपांगों के लिए लगभग तीस शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो वैदिक स्थापत्य की समृद्ध परंपरा दर्शाते हैं। 'छरदी' शब्द छत के लिए, जबकि 'दुरोण' और 'दुयंसु' द्वारों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। 'पृथु', 'वृहत्', 'ऊरु', 'दीर्घ', 'गभीर' जैसे विशेषण बड़े और भव्य गृहों की ओर संकेत करते हैं। वरुण के घर को 'सहस्त्र-द्वारम्' और मित्र-वरुण के गृह को दृढ़ तथा सह-स्तंभों वाला कहा गया है।

कुछ भवन इतने विशाल थे कि उनमें संयुक्त परिवार रहते थे, और कई दो या तीन मंजिलों वाले ('त्रिधातु') थे। घरों में पशुओं के लिए 'गोष्ठ', अग्नि के लिए विशेष स्थान, तथा भंडारगृह ('धनधानी') की व्यवस्था रहती थी। अथर्ववेद में 'पत्नीनां सदन' का उल्लेख स्त्रियों के अलग कक्ष का प्रमाण देता है। इस प्रकार वैदिक गृह केवल निवास नहीं, बल्कि सामाजिक, धामिज़्क और पारिवारिक जीवन का सुव्यवस्थित केंद्र थे।

अथर्ववेद में बहुमंजिली भवनों के अनेक उल्लेख मिलते हैं, जहाँ दो, चार, छह, आठ और दस कक्षों वाली 'शालाओं' का वर्णन है। यह दर्शाता है कि वैदिक काल में बहुमंजिला और विस्तृत गृह-निर्माण की परंपरा विद्यमान थी। अथर्ववेद में 'प्रतीची शाला' का उल्लेख मिलता है, जिससे पश्चिममुखी भवन का संकेत मिलता है। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि शाला अपने भीतर अग्नि, मनुष्य और पशुओं को स्थान देती है — अर्थात् वह गृह जीवन का केंद्र थी। शालाओं की तुलना वधू और उत्तम पाँव वाली हथिनी से की गई है, जो उनके सौंदर्य, दृढ़ता और जीवंतता का प्रतीक है।

इन वर्णनों से स्पष्ट है कि वैदिक भवन अनेक भागों में विभक्त और कलात्मक ढंग से निर्मित होते थे। 'शाला' शब्द संभवतः मध्यम वर्ग के निवास के लिए प्रयुक्त हुआ होगा, जैसा कि डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा है — ये भवन आकार में राजप्रासादों से छोटे, परंतु सुन्दर और सुदृढ़ होते थे।

वैदिक काल में भवनों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया था। पहली श्रेणी में राजा और उच्च वगज़ के लिए बने श्रेष्ठ भवन आते थे, दूसरी में मध्यम वगज़ के लोगों के घर, और तीसरी में साधुओं, वनप्रस्थों तथा निम्न वगज़ के निवास हेतु बनी झोपड़ियाँ या 'पर्णशालाएँ' शामिल थीं।

पर्सी ब्राउन के अनुसार प्रारंभिक वैदिक गृह झोपड़ीनुमा थे, जिनका आकार गोल या अंडाकार होता था। ये मधुमक्खियों के छत्तों की तरह निर्मित होते थे। बाँस और लचीली टहनियों की दीवारों पर पत्तों या घास से गुम्बदाकार छत बनाई जाती थी। बिहार के बारा-बर की पहाड़ी में स्थित 'सुदामा गुफा' ऐसी ही झोपड़ी के पत्थर पर उकेरे गए रूप का सुंदर उदाहरण है।

समय के साथ इन झोपड़ियों का स्वरूप विकसित हुआ। अब अंडाकार झोपड़ियाँ ढोलाकार छप्पर वाली बनने लगीं और तीन-चार झोपड़ियों को जोड़कर बीच में आँगन निकाला जाने लगा। बाद के चरण में लकड़ी या खपरैल की छतें और कच्ची ईंटों की दीवारें बनने लगीं। चौकोर दरवाजों और दो किवाड़ों का प्रचलन हुआ। ढोलाकार छतों से ही आगे चलकर 'अश्वनाल' (घोड़े की नाल) आकार के चापों का विकास हुआ। इस प्रकार वैदिक झोपड़ी से विकसित होकर भारतीय स्थापत्य धीरे-धीरे तकनीकी, सौंदर्य और शिल्प की उच्च अवस्था तक पहुँचा जहाँ सादगी में भी दृढ़ता और सौंदर्य का समन्वय विद्यमान था।

वैदिक काल में गृह-निर्माज़ण निश्चित योजना के अनुसार किया जाता था। निर्माण की शुरुआत एक मुख्य स्तंभ की स्थापना से होती थी, जिसे 'स्कम्भ' या 'स्थूण' कहा गया है। यह स्तंभ घर की छत और संरचना का आधार होता था। ऋग्वेद में इन्द्र को 'स्कम्भियान्' अर्थात् श्रेष्ठ स्तंभ का स्वामी कहा गया है और उससे घर के आधार स्तंभ के दृढ़ होने की प्रार्थना की गई है — 'वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणाः सत्र सोम्यानाम्'।

स्तंभ के अधिष्ठान को 'धरुण' कहा गया, जिससे आगे चलकर 'धारण' शब्द बना। बड़े स्तंभ को महत् स्कन्ध और ऊँचे स्तंभ को ऊर्ध्वतिष्ठ कहा गया है। अथर्ववेद में वृहस्पति, सविता, वायु और इन्द्र से शाला (गृह) के निर्माण हेतु स्तंभों की स्थापना की प्रार्थना की गई है — 'इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिः मिनोतु प्रजानन्'। मरुद्गणों से इस शाला को घृत और जल से सींचने, तथा भगदेवता से भूमि को उपजाऊ बनाने की भी कामना की गई है।

इन स्तंभों को बाद में आड़े बल्लों और बाँसों से जोड़ा जाता था, जिससे छत का ढांचा (ठाठ) बनता था। छत बनाने की दो प्रक्रियाएँ बताई गई हैं—पहली में बाँसों का जाल बिछाकर उस पर बाँस के फट्टे लगाते थे (जिसे 'आयाम' कहा गया), और दूसरी में इस ढांचे पर फूस की तहें बिछाकर उसे 'बह्वण' कहा गया। अंत में ऊपर बाँस की खप्पचियाँ बाँधकर छत को गूँथा जाता था। बड़ी छतों को सहारा देने हेतु नीचे मोटे बल्ले या थूनियाँ लगाई जाती थीं।

वैदिक काल में गृहपति अपने घर को केवल निवास नहीं, बल्कि देवी स्वरूप मानकर उसकी पूजा करता था। गृह उसके लिए सौभाग्य और समृद्धि का प्रतीक था, जो गोमती, अश्ववती, पयस्वती, धृतवती, ऊर्जस्वती और सूनृतावती जैसी देवियों की कृपा से सम्पन्न माना जाता था।

अथर्ववेद में गृह-निर्माण संबंधी संदर्भों पर डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'वृहच्छन्दाः' (अथर्ववेद 3/12/3) शब्द का विशेष विश्लेषण किया है। उनके अनुसार 'वृहच्छन्द' शब्द घर के ब्रह्मसूत्र और गर्भसूत्र से संबंधित है।

ब्रह्मसूत्र का अर्थ है — घर का उत्सेध या ऊर्ध्ववस्तार, अर्थात् एक मंजिल पर दूसरी मंजिल का निर्माण। इसके लिए सूक्त में 'कोशे कोशः समुज्जितः' कहा गया है, जो बहुमंजिली रचना की ओर संकेत करता है।

गर्भसूत्र का अर्थ है— भूमितल पर बनी कक्षाएँ या आधारभूत निर्माण। इसके लिए 'कुलायेऽधि कुलायम्' शब्द प्रयुक्त है।

दूसरे शब्दों में, ब्रह्मसूत्र से अभिप्राय ऊर्ध्व (ऊपर की ओर) निर्माण से है, जबकि गर्भसूत्र भूमिगत या आधार स्तर के निर्माण को सूचित करता है।

ग्राम -वैदिक काल में ग्राम समाज का मूल आधार थे। अनेक कुल या परिवार मिलकर ग्राम बनाते थे, जिनका प्रधान ग्रामणी होता था। ऋग्वेद में ग्रामों का बार-बार उल्लेख मिलता है। ये गाँव सामान्यतः परस्पर निकट बसे होते और सड़कों द्वारा जुड़े रहते थे। बड़े गाँवों को महाग्राम कहा गया है। इतिहासकार हेबेल के अनुसार वैदिक ग्राम आयताकार होते थे और उनके चारों ओर द्वार बने रहते थे। पसी ब्राउन के मत में, ग्रामों के चारों ओर लकड़ी की बाड़ या परकोटा सुरक्षा हेतु बनाया जाता था, जिसमें एक या अधिक तोरण द्वार होते थे। यह बाड़ व्यवस्था संभवतः खेतों की सुरक्षा हेतु बनी ऊँची मुंडेरों से विकसित हुई थी, और यही परंपरा आगे चलकर जैन-बौद्ध स्तूपों की वेष्टिनी संरचना में अपनाई गई।

पुर - वैदिक काल में 'पुर' शब्द का प्रयोग आवासीय स्थलों या दुर्गों के लिए हुआ है। यद्यपि उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य में इसका अर्थ 'नगर' से लिया गया, पर ऋग्वेद में 'पुर' सामान्यतः गढ़ या दुर्ग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अनेक मन्त्रों में इन्द्र द्वारा असुरों या दस्युओं के पुरों को नष्ट करने का उल्लेख मिलता है। इसी कारण वह

'पुरन्दर' कहलाए। इन 'पुरों' से तात्पर्य पत्थर या धातु से बने सुरक्षित दुर्गों या नगरों से है, जो द्रविड़ों के थे। आर्य (आर्यों) ने इन द्रविड़ नगरों को पराजित कर उनकी उन्नत नगर-योजना, लिंग-पूजा और स्थापत्य-कला सीखी। धीरे-धीरे यही परंपरा उत्तर वैदिक काल में विकसित होकर कुरु-पांचाल, विदेह, काशी, कौशल, मगध आदि राज्यों में विस्तृत हुई। इस काल में राजभवनों, दुर्गों, प्राकारों, खाइयों और प्राचीरों का निर्माण बढ़ा। भारत में किए गए उत्खननों, जैसे सागर के एरण स्थल में, ई.पू. 1900 से 700 तक प्राकारयुक्त नगरों के प्रमाण मिले हैं। इन नगरों में मिट्टी की मजबूत दीवारें और प्राकृतिक सुरक्षा के लिए नदियाँ प्रयुक्त की गईं, जो ऋग्वेद में वर्णित पुरों की परंपरा से मेल खाती हैं।

आर्यों ने दुर्ग निर्माण की योजना और तकनीक भी द्रविड़ों से ही सीखी थी। ऋग्वेद के कई मंत्रों में यह संकेत मिलता है कि इन्द्र से आर्यों ने यह प्रार्थना की कि वे द्रविड़ों को पराजित कर उनका संचित धन और संपत्ति आर्यों को प्रदान करें। इससे स्पष्ट है कि द्रविड़ लोग न केवल संगठित रूप से रहते थे, बल्कि अपनी रक्षा के लिए सेनाएँ और सुदृढ़ दुर्ग भी रखते थे, जिनमें वे अपने खजाने और मूल्यवान वस्तुएँ सुरक्षित रखते थे। इस तथ्य की पुष्टि 1922 ई. में हुए हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के उत्खननों से भी होती है। हड़प्पा नगर के पश्चिमी भाग में एक विशाल दुर्ग या कोटला पाया गया, जो चतुर्भुजाकार योजना पर निर्मित था। इसकी लंबाई लगभग 460 गज, चौड़ाई 215 गज, और ऊँचाई 40 फुट थी। इस दुर्ग के चारों ओर एक सुदृढ़ प्राचीर निर्मित थी, जो रक्षा के उद्देश्य से बनाई गई थी।

इसी प्रकार मोहनजोदड़ो में भी नगर के पश्चिमी भाग में ऊँचे टीले पर बने दुर्ग के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन दुर्गों की योजना, सुदृढ़ता और ऊँचाई से यह स्पष्ट होता है कि द्रविड़ सभ्यता में संगठित शहरी नियोजन और सैन्य सुरक्षा प्रणाली अत्यंत विकसित थी। आर्यों ने द्रविड़ों के इन दुर्गों को देखकर न केवल उनकी रक्षा व्यवस्था और स्थापत्य शैली को अपनाया, बल्कि अपने नगरों और राजधानियों में भी इसी प्रकार के प्राकारयुक्त दुर्गों और प्राचीरों का निर्माण करना प्रारंभ किया।

निष्कर्षतः द्रविड़ों की सभ्यता अत्यंत संगठित और विकसित थी। वे न केवल दुगोज़ं और कोटलों का निर्माण करते थे, बल्कि उनमें खजाना और सुरक्षा व्यवस्था भी बनाए रखते थे। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के उत्खननों से यह तथ्य प्रमाणित होता है कि उनके नगर योजनाबद्ध, प्राचीरयुक्त और सामरिक दृष्टि से सुदृढ़ थे। आर्यों ने द्रविड़ों से दुर्ग निर्माण की यह तकनीक ग्रहण कर अपनी सभ्यता में अपनाई, जिससे वैदिक कालीन नगर नियोजन और रक्षा प्रणाली का विकास हुआ।